INTERNATIONAL JOURNAL OF EXPLORING EMERGING TRENDS IN ENGINEERING
Peer-Reviewed, Refereed, Indexed and International Journal, https://ijoeete.com/
|ISSN No. 2394-0573 |Volume: 1, Issue: 01 | July - Dec 2023

भारतीय संविधान में सामाजिक न्यायः प्रमुखता और प्रभाव

[1]Grihshobha, [2]*Dr. Jiley Singh*
[1]*Research Scholar*, [2]*Supervisor*
[1-2] *Department of* Political Science, *Malwanchal University, Indore (M.P)*

सार
सामाजिक न्याय भारतीय संविधान का एक मूलभूत स्तंभ है, जो इसकी प्रस्तावना और विभिन्न प्रावधानों में निहित है। यह शोध भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय की प्रमुखता और प्रभाव की पड़ताल करता है, इसके ऐतिहासिक संदर्भ, प्रमुख प्रावधानों और भारतीय समाज पर प्रभाव पर ध्यान केंद्रित करता है। यह जांच करता है कि संविधान जातिगत भेदभाव, लैंगिक असमानता और आर्थिक असमानताओं सहित सामाजिक अन्यायों को कैसे संबोधित करता है। इसके अतिरिक्त, यह सामाजिक न्याय सिद्धांतों को बनाए रखने में न्यायपालिका और कार्यपालिका की भूमिका पर चर्चा करता है। यह शोध भारत में सामाजिक न्याय प्राप्त करने के लिए चल रही चुनौतियों और निरंतर प्रयासों की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए समाप्त होता है।

प्रमुख शब्दः सामाजिक न्याय, भारतीय संविधान, जातिगत भेदभाव, लैंगिक असमानता, आर्थिक असमानताएँ, न्यायपालिका, कार्यपालिका।

भूमिका
सामाजिक न्याय के विचार को पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपने प्रसिद्ध भाषण 'आधी रात की मुलाकात' में उल्लेखित किया, जहाँ उन्होंने हमारी आजादी की सुबह को संबोधित किया। नेहरू ने इस अवसर पर भारत की आजादी की भोर का वर्णन किया और समाज के हर वर्ग के लिए समानता और न्याय की भावना को महत्व दिया।
"भारत की सेवा का मतलब उन लाखों लोगों की सेवा है जो पीड़ित हैं। इसका अर्थ है गरीबी और अज्ञानता तथा बीमारी और अवसर की असमानता का अंत। हमारी पीढ़ी के सबसे महान व्यक्ति की महत्वाकांक्षा हर उस आंख से आंसू पोंछने की रही है जो हमसे परे हो सकती है, लेकिन जब तक आंसू और पीड़ा है, तब तक हमारा काम खत्म नहीं होगा।
सामाजिक न्याय की अवधारणा अपने सबसे व्यापक अर्थ में राज्य के तीन अंगों की कार्यप्रणाली को संदर्भित करती है। संपूर्ण विषयवस्तु हमारे संविधान की प्रस्तावना के शब्दों पर आधारित है।
भारतीय संविधान में निहित दर्शन, पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा प्रस्तुत ऐतिहासिक उद्देश्य प्रस्ताव से उभरता है। 13 दिसंबर 1946 को, नेहरू ने संविधान सभा में इस प्रस्ताव को पेश किया, जिसे उद्देश्य प्रस्ताव के नाम से जाना जाता है। इस प्रस्ताव में उन्होंने भारत के लिए एक स्वतंत्र, संप्रभु और धर्मनिरपेक्ष गणराज्य की नींव रखी थी, जिसमें सभी नागरिकों को समानता, स्वतंत्रता और न्याय प्रदान करने का लक्ष्य था।
इस प्रस्ताव को 22 जनवरी, 1947 को संविधान सभा द्वारा अपनाया गया जो एक प्रस्ताव से कुछ अधिक है। यह हम सबके लिए एक घोषणा है, एक दृढ़ संकल्प है, एक प्रतिज्ञा है, एक उपक्रम है और एक समर्पण है। यह संकल्प ईमानदारी से संविधान की प्रस्तावना में प्रतिबिंबित होता है, जो 1976 में संशोधित होकर संविधान के लक्ष्यों और उद्देश्यों का सारांश प्रस्तुत करता है। इस संशोधन द्वारा प्रस्तावना में तीन नये शब्द समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष तथा अखंडता सम्मिलित किये गये।
संविधान की प्रस्तावना उन मूलभूत मूल्यों और दर्शन का प्रतीक है जिस पर संविधान आधारित है और लक्ष्य और उद्देश्य हैं जिन्हें प्राप्त करने के लिए प्रयास करने के लिए संविधान के संस्थापकों ने राज्य व्यवस्था को आदेश दिया है। भारत के सर्वोच्च न्यायालय के कई निर्णयों में प्रस्तावना के महत्व और उपयोगिता को इंगित किया गया है।
प्रारंभ में यह विचार था कि प्रस्तावना अदालत में लागू करने योग्य नहीं है, लेकिन बाद में सर्वोच्च न्यायालय ने केशवानंद भारती मामले में अपने फैसले में कहा कि प्रस्तावना संविधान का हिस्सा है और इस बात पर

INTERNATIONAL JOURNAL OF EXPLORING EMERGING TRENDS IN ENGINEERING
Peer-Reviewed, Refereed, Indexed and International Journal, https://ijoeete.com/
|ISSN No. 2394-0573 |Volume: 1, Issue: 01 | July - Dec 2023

भी ध्यान केंद्रित किया कि प्रस्तावना न्याय की भावना को स्थापित करती है और इसलिए, सरकार उद्देश्यों को लागू करने के लिए बाध्य है और इसलिए लागू करने योग्य है।
प्रस्तावना उन उद्देश्यों को बताती है जिन्हें संविधान स्थापित करना और बढ़ावा देना चाहता है और संविधान की कानूनी व्याख्या में भी सहायता करता है जहां भाषा अस्पष्ट पाई जाती है। हमारे संविधान की प्रस्तावना दो उद्देश्यों को पूरा करती है:
1) यह उस स्रोत को इंगित करता है जिससे संविधान अपना अधिकार प्राप्त करता है।
2) यह उन उद्देश्यों को भी बताता है जिन्हें संविधान स्थापित करना और बढ़ावा देना चाहता है।
''हम भारत के लोग'' शब्द अधिनियमित होते हैं और खुद को देते हैं यह संविधान भारत की अंतिम संप्रभुता की घोषणा करता है और संविधान उनके अधिकार पर निर्भर करता है।
संप्रभुता का अर्थ है किसी राज्य का स्वतंत्र अधिकार, जिसका अर्थ है कि उसके पास किसी भी विषय पर कानून बनाने की शक्ति है और वह किसी अन्य राज्य या बाहरी शक्ति के नियंत्रण के अधीन नहीं है।
भारतीय संविधान की प्रस्तावना यह घोषित करती है कि सभी प्राधिकार का स्रोत भारत के लोग ही हैं। यह न केवल एक राजनीतिक लोकतंत्र की कल्पना करती है, बल्कि एक सामाजिक दृष्टिकोण से भी लोकतांत्रिक गणराज्य का संकल्प लेती है। इस प्रस्तावना में न्याय, स्वतंत्रता, और बंधुत्व की भावना से संपन्न एक लोकतांत्रिक समाज की परिकल्पना की गई है, जहां सामाजिक और आर्थिक समानता को भी उतना ही महत्व दिया जाता है जितना कि राजनीतिक समानता को।
अल्पसंख्यकों के साथ किया गया व्यवहार स्पष्ट रूप से यह दर्शाता है कि सत्ता में बैठे लोगों ने संविधान में अंतर्निहित दर्शन की अनदेखी नहीं की है। प्रस्तावना द्वारा सुनिश्चित आर्थिक न्याय को राजनीतिक लोकतंत्र की सीमा का विस्तार करके प्राप्त किया जा सकता है। इससे पता चलता है कि भारतीय संविधान राजनीतिक लोकतंत्र के अलावा सामाजिक लोकतंत्र भी प्रदान करता है।
संविधान निर्माता आम आदमी के जीवन के प्रति काफी चिंतित थे और उनकी राय थी कि जब तक संविधान सामाजिक संतुलन का मार्ग प्रशस्त नहीं करता, तब तक कोई भी संविधान या उसके कानून पर गर्व नहीं कर सकता।
गांधी इसे 'मेरे सपनों के भारत' के रूप में वर्णित किया गया है, अर्थात् एक ऐसा भारत, जिसमें सबसे गरीब स्वयं महसूस करते हैं कि यह उनका देश है, जिसकी प्रभावी आवाज बनती है और ऐसा भारत जिसमें सभी समुदाय पूर्ण सद्भाव के साथ रहेंगे।
इस प्रकार संविधान में निहित सामाजिक न्याय का उद्देश्य एक कल्याणकारी राज्य का निर्माण करने के लिए सामाजिक असंतुलन को दूर करना है। डॉ. अम्बेडकर इतिहास में सामाजिक न्याय के लिए सहस्राब्दी के पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने सभी के लिए सामाजिक न्याय की दिशा में कानून का पहिया घुमाकर भारतीय मानवता के विशाल वर्ग के लिए सामाजिक न्याय हासिल करने का अभियान चलाया।
भारतीय संविधान की प्रस्तावना एक व्यापक रूपरेखा है जो लोगों को अपनी प्रमुख प्रतिबद्धताएँ प्रदान करती है, जिसे जी. ऑस्टिन ने सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण एक सामाजिक दस्तावेज के रूप में वर्णित किया है।
इसके अधिकांश प्रावधानों को सामाजिक क्रांति के लक्ष्यों को बढ़ावा देने और इसकी उपलब्धि के लिए आवश्यक स्थिति स्थापित करने के रूप में निर्देशित किया गया है। 15, 16, 17, 41 और 43 जैसे कुछ विशिष्ट अनुच्छेदों ने उभरते भारत के प्रत्येक नागरिक के लिए समानता, गरिमा और न्यूनतम मानवीय आवश्यकताओं के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को पूरा करने का वादा किया।
इसलिए, ऐसे सामाजिक दस्तावेज के तत्वावधान में स्थापित भारतीय लोकतंत्र का उद्देश्य कानून के माध्यम से समानता और न्याय के सिद्धांत पर आधारित एक नई सामाजिक व्यवस्था लाना है।
ग्रानविले ऑस्टिनभाग 4 में निहित निर्देशों के उपकरण की आत्मा की पड़ताल करता है। निदेशक सिद्धांतों में, हालाँकि, सामाजिक क्रांति का और भी स्पष्ट विवरण मिलता है। उनका उद्देश्य भारतीय जनता को सकारात्मक अर्थों में समाज और प्रकृति द्वारा सदियों की जबरदस्ती से पैदा हुई निष्क्रियता से मुक्त करना, उन घृणित भौतिक स्थितियों से मुक्त करना है जो उन्हें अपना सर्वश्रेष्ठ पूरा करने से रोकती थीं... निदेशक

INTERNATIONAL JOURNAL OF EXPLORING EMERGING TRENDS IN ENGINEERING
Peer-Reviewed, Refereed, Indexed and International Journal, https://ijoeete.com/
|ISSN No. 2394-0573 |Volume: 1, Issue: 01 | July - Dec 2023

सिद्धांतों का सार अनुच्छेद 38.8 में निहित है।
उन्होंने यह भी राय दीः
संविधान कई लक्ष्यों की प्राप्ति को बढ़ावा देने वाला था, उनमें से सबसे प्रमुख लक्ष्य सामाजिक क्रांति था। इस क्रांति के माध्यम से आम आदमी की बुनियादी जरूरतें पूरी की जाएंगी, और आशा थी कि यह क्रांति भारतीय समाज की संरचना में मूलभूत परिवर्तन लाएगी – एक लंबी और गौरवशाली सांस्कृतिक परंपरा वाला समाज, लेकिन इसकी बहुत आवश्यकता है ऊर्जा और राष्ट्रवाद का शक्तिशाली संचार। सामाजिक क्रांति का विषय विधानसभा की कार्यवाही और दस्तावेजों में चलता है।
संविधान की प्रस्तावना में सामाजिक न्याय शब्द का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार राज्य के नीति निदेशक सिद्धांतों का अनुच्छेद 38 भी इस अभिव्यक्ति का उपयोग करता है लेकिन समय–समय पर सत्ता संभालने वाले राजनीतिक दलों पर सामाजिक न्याय पूरा करने के तौर–तरीकों को छोड़ देता है।
इस अभिव्यक्ति का स्पष्ट अर्थ है एक समतावादी व्यवस्था लाकर समाज के वंचित और कमजोर वर्ग के लिए न्याय, जिसके तहत समाज के कमजोर वर्गों को समान अवसर प्रदान किए जाएं।
भारतीय संविधान वास्तव में रूसो की उस प्रसिद्ध उक्ति को मान्यता देता है, जिसमें कहा गया है कि सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियां समानता को नष्ट करने की प्रवृत्ति रखती हैं, लेकिन कानून की शक्ति समानता को बनाए रखने की प्रवृत्ति रखती है। संविधान में सकारात्मक भेदभाव के प्रावधानों को शामिल किया गया है, जैसे कि अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण, जो वास्तविक समानता को बढ़ावा देने के लिए डिजाइन किए गए हैं।
यह सकारात्मक भेदभाव कमजोर समुदायों को सामाजिक और आर्थिक अवसरों तक पहुँच प्रदान करता है, जिससे वे उन स्थितियों को पार कर सकें जो उनके विकास को रोकती हैं। इस प्रकार, संविधान की यह विशेषता समाज में गहराई तक जड़ जमाए असमानताओं को कम करने का प्रयास करती है और एक अधिक समतावादी समाज की दिशा में आगे बढ़ती है।
हमारे समाजवादी गणतंत्र में सामाजिक न्याय वर्तमान मायास्मिक परिवेश में एक सामाजिक–आर्थिक क्रांति है। भारत एक विशाल बहुसांस्कृतिक समाज है और समकालीन भारत में मानवीय स्थिति इतनी मार्मिक है कि सरकारें समाजवादी पैटर्न से लेकर संपूर्ण क्रांति तक क्रांतिकारी बदलावों का दावा करने और वादा करने के लिए बाध्य हैं।

संविधान में विशेष उपाय

संविधान निर्माता सामाजिक न्याय से संबंधित संविधान के कुछ प्रावधानों के उल्लंघन को लेकर काफी आशंकित थे। इसलिए, संविधान में अनुसूचित जाति और जनजातियों के हितों की सुरक्षा के लिए प्रावधान अंतर्निहित हैं।
ये प्रावधान सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय के आश्वासन को पूरा करते हैं जिसे संविधान की प्रस्तावना में उनकी उन्नति और सर्वांगीण विकास सुनिश्चित करने के लिए कहा गया है। वास्तव में भेदभाव का विचार गांधी जी के मन में दक्षिण अफ्रीका में आया जहां भारतीयों को बुनियादी कानूनी अधिकारों से वंचित रखा गया था। वापस लौटने पर उन्हें एहसास हुआ कि अस्पृश्यता एक क्रूर और अमानवीय संस्था थी जो मानवीय गरिमा का उल्लंघन करती थी और तर्क के प्रतिकूल थी। उन्होंने कहा कि यदि हम एक ही ईश्वर की संतान हैं तो हमारे बीच कोई दर्जा कैसे हो सकता है।
डॉ. बीआर अंबेडकर, अस्पृश्यता की निंदा करने वाले सबसे मजबूत अग्रदूतों में से एक थे, जिन्होंने भारत में अछूतों की भयावह दुर्दशा को देखकर गहरी पीड़ा महसूस की थी। वे स्वयं इस अतार्किक और अपवित्र प्रथा के शिकार रहे थे। संविधान की मसौदा समिति के अध्यक्ष के रूप में, उन्होंने दृढ़ता से सुनिश्चित किया कि जाति, पंथ, धर्म, और क्षेत्र के आधार पर किसी भी प्रकार का भेदभाव न हो, क्योंकि उन्होंने समानता के नायक के रूप में मानवीय मामलों में संतुलन बनाए रखने के लिए संविधान और कानून के शासन का सहारा लिया था। इसके माध्यम से उन्होंने गरिमा, स्वतंत्रता और स्वरोजगार के अवसरों के संदर्भ में आम नागरिक को समान व्यवहार के अधिकार से वंचित होने से बचाया।
संविधान में शायद ही कोई अन्य अनुच्छेद इतनी सर्वसम्मति और इतने उत्साह के साथ अपनाया गया हो,

INTERNATIONAL JOURNAL OF EXPLORING EMERGING TRENDS IN ENGINEERING
Peer-Reviewed, Refereed, Indexed and International Journal, https://ijoeete.com/
|ISSN No. 2394-0573 |Volume: 1, Issue: 01 | July - Dec 2023

जितना कि यह विशेष अनुच्छेद। यह सच है कि यह अनुच्छेद किसी के लिए कोई विशेष विशेषाधिकार नहीं बनाता है। फिर भी, यह एक महान मौलिक अधिकार है, जो भारतीय आबादी के एक–छठे हिस्से को निरंतर अधीनता, निरंतर अपमान और निराशा से मुक्ति का एक चार्टर प्रदान करता है।

इस संदर्भ में यह याद करना अनुचित नहीं होगा कि गांधीजी ने क्या कहा था ''मैं दोबारा जन्म नहीं लेना चाहता, लेकिन अगर मैं दोबारा जन्म लेता हूं, तो मेरी इच्छा है कि मैं एक हरिजन के रूप में, एक अछूत के रूप में जन्म लूं, ताकि मैं इन वर्गों के लोगों पर होने वाले उत्पीड़न और अपमान के खिलाफ निरंतर संघर्ष का नेतृत्व किया जा सकता है।

यह याद करना वाकई में महत्वपूर्ण है कि यह भाग्य की विडंबना थी जिसने एक ऐसे व्यक्ति को संविधान निर्माण का महत्वपूर्ण कार्य सौंपा, जिसे एक समय एक स्कूल से दूसरे स्कूल में ले जाया गया था, जिसे कक्षा के बाहर बैठकर अपनी शिक्षा लेनी पड़ी थी, और जिसे रात में होटलों से इसलिए बाहर निकाल दिया गया था क्योंकि वह एक अछूत था। यह व्यक्ति कोई और नहीं, बल्कि डॉ. बीआर अंबेडकर थे, जो संविधान की प्रारूप समिति के अध्यक्ष रहे। उन्होंने उस अनुच्छेद को डिजाइन किया जो इस हानिकारक सामाजिक प्रथा को समाप्त करने का आधार बना और जो उससे संबंधित मृत्यु–प्रत्यारोप का प्रतीक बन गया।

अस्पृश्यता का उन्मूलन

अनुच्छेद 17 के अनुसार, 'अस्पृश्यता' को समाप्त कर दिया गया है और इसका किसी भी रूप में अभ्यास करना निषिद्ध है। यह अनुच्छेद यह भी घोषणा करता है कि 'अस्पृश्यता' से उत्पन्न किसी भी विकलांगता को लागू करना कानून के अनुसार एक दंडनीय अपराध होगा। इस प्रकार, अनुच्छेद 17 न केवल एक घोषणा है बल्कि एक कानूनी आधार भी प्रदान करता है जिस पर यह सुनिश्चित किया जाता है कि अस्पृश्यता का अब से किसी भी रूप में अभ्यास नहीं किया जाएगा।

अस्पृश्यता अपराध अधिनियम जून 1955 में लागू हुआ। एक अर्थ में इसे संविधान के अनुच्छेद 15 का विस्तार कहा जा सकता है। इस अधिनियम का उद्देश्य अनुसूचित जाति के खिलाफ किसी भी विकलांगता के प्रवर्तन को अवैध बनाना था। 1976 में अस्पृश्यता अपराध अधिनियम में संशोधन कर इसकी दंडात्मक धाराओं को और अधिक कठोर बना दिया गया। इस अधिनियम का नाम बदलकर नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम भी कर दिया गया है।

अधिनियम का एक महत्वपूर्ण नया प्रावधान यह है कि अस्पृश्यता अपराध के लिए दोषी ठहराया गया व्यक्ति चुनाव लड़ने के लिए अयोग्य घोषित कर दिया जाएगा। यह पहली बार था कि भारत में चुनाव के इतिहास में ऐसा प्रावधान कानून बना।

संवैधानिक प्रावधानों, अस्पृश्यता अपराध अधिनियम के संचालन और न्यायिक घोषणाओं के बावजूद, भारत अभी भी अस्पृश्यता की बुराई को पूरी तरह से जड़ से खत्म करने का दावा नहीं कर सकता है। सामाजिक बुराइयों के खिलाफ लड़ाई में कानून कई हथियारों में से एक है।

इस आंदोलन के कुछ अच्छे परिणाम सामने आये। कई मंदिरों को खोल दिया गया और कम से कम देश के शहरी केंद्रों में अस्पृश्यता की कठोरता अतीत की बात बन गई थी। लेकिन अस्पृश्यता की बुराई अभी भी कई रूपों में और देश के कई हिस्सों में मौजूद है।

अस्पृश्यता अपराध विधेयक, जिसे 1955 में एक अधिनियम में पारित किया गया था, पर बोलते हुए, भारत के तत्कालीन गृह मंत्री जीबी पंत ने कहाः

''छुआछूत का यह कैंसर हमारे समाज के मूल में प्रवेश कर चुका है। यह न केवल हिंदू धर्म पर एक धब्बा है, बल्कि इसने असहिष्णुता, वर्गवाद और विभाजनकारी प्रवृत्तियों को भी जन्म दिया है। आज हम अपने समाज में जो कई बुराइयां पाते हैं, उनमें से कई का पता लगाया जा सकता है।'' इस जघन्य राक्षसी के लिए।"

यद्यपि कानूनों का अस्तित्व महत्वपूर्ण है, फिर भी आत्मसंतोष की कोई जगह नहीं होती है। पूर्वाग्रहों का मुकाबला करने के लिए कानून अक्सर पर्याप्त उपाय नहीं होते। अस्पृश्यता और सामाजिक भेदभाव के हर रूप के विरुद्ध लड़ाई को व्यापक संपर्क, जनमत संग्रह, और सामाजिक कार्रवाई के माध्यम से लोगों के दिल और दिमाग तक पहुंचाना होगा। इसके अलावा, सख्त निगरानी और जातिगत भेदभाव की हर आक्रामक

INTERNATIONAL JOURNAL OF EXPLORING EMERGING TRENDS IN ENGINEERING
Peer-Reviewed, Refereed, Indexed and International Journal, https://ijoeete.com/
|ISSN No. 2394-0573 |Volume: 1, Issue: 01 | July - Dec 2023

अभिव्यक्ति को कठोरता से दंडित करने के लिए निरंतर सतर्क रहना आवश्यक है।
इस संदर्भ में, अनुसूचित जाति और जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989, भारतीय संसद द्वारा अनुसूचित जातियों और जनजातियों के खिलाफ होने वाले अत्याचारों को रोकने के लिए अधिनियमित किया गया है। यह अधिनियम लोकप्रिय रूप से पीओए, एससी/एसटी अधिनियम, अत्याचार निवारण अधिनियम या केवल अत्याचार अधिनियम के नाम से जाना जाता है और यह सामाजिक न्याय को सुनिश्चित करने में एक महत्वपूर्ण कदम है।
भारतीय संविधान का अनुच्छेद 17 'अस्पृश्यता' को समाप्त करने और ऐसी सभी प्रथाओं को प्रतिबंधित करने का प्रावधान करता है। यह मूल रूप से एक ''सिद्धांत का बयान'' है जिसे दलितों को मिलने वाले अपमान और बहुआयामी उत्पीड़न को दूर करने और उनके मौलिक और सामाजिक–आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक अधिकारों को सुनिश्चित करने के प्रत्यक्ष उद्देश्य के साथ क्रियान्वित करने की आवश्यकता है।
इसका उद्देश्य भारतीय समाज को पारंपरिक मान्यताओं के अंध एवं अतार्किक पालन से मुक्त कराना तथा पूर्वाग्रह मुक्त समाज की स्थापना करना है। इसके लिए अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम 1955 बनाया गया। हालाँकि, खामियों ने सरकार को इस कानूनी उपकरण में बड़े पैमाने पर बदलाव लाने के लिए मजबूर किया। भले ही 1976 के बाद से नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम के रूप में इस अधिनियम को नया स्वरूप दिया गया हो, अनुसूचित जाति और जनजाति की सामाजिक–आर्थिक स्थितियों में सुधार के लिए उठाए गए विभिन्न कदमों के बावजूद, इन समुदायों के सदस्य अभी भी असुरक्षित बने हुए हैं और विभिन्न प्रकार के अपराधों, अपमान और उत्पीड़न का सामना कर रहे हैं। जब ये समुदाय के सदस्य अपने अधिकारों का दावा करते हैं, तो उनके खिलाफ अस्पृश्यता जैसे व्यवहार और उन्हें डराने और आतंकित करने की कोशिश करने वाले निहित स्वार्थ सामने आते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि एससी और एसटी पर अत्याचार अभी भी जारी है, और इसे रोकने के लिए और अधिक प्रभावी उपायों की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः, सामाजिक न्याय पर भारतीय संविधान के प्रावधान ऐतिहासिक अन्यायों को दूर करने और एक अधिक न्यायसंगत समाज को बढ़ावा देने के प्रति गहरी प्रतिबद्धता को दर्शाते हैं। संविधान निर्माताओं ने न केवल राजनीतिक अधिकारों की गारंटी बल्कि सभी नागरिकों के लिए सामाजिक और आर्थिक अवसर सुनिश्चित करने के महत्व को भी पहचाना। इन वर्षों में, न्यायपालिका ने इन प्रावधानों की व्याख्या करने और उन्हें लागू करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जिससे जाति भेदभाव, लैंगिक समानता और आर्थिक सशक्तिकरण जैसे क्षेत्रों में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है।
इन प्रगतियों के बावजूद, चुनौतियाँ बनी हुई हैं। गहरी जड़ें जमा चुकी सामाजिक पदानुक्रम, लगातार लैंगिक पूर्वाग्रह और बढ़ती आर्थिक असमानताएं भारत में सच्चे सामाजिक न्याय की प्राप्ति में बाधा बनी हुई हैं। इसके अलावा, सामाजिक न्याय नीतियों की प्रभावशीलता अक्सर अपर्याप्त कार्यान्वयन और प्रवर्तन तंत्र द्वारा सीमित होती है।

संदर्भ

1. पटेल, एस. (2019)। भारत में सामाजिक न्याय पर संवैधानिक प्रावधानों का प्रभावः एक केस स्टडी। (डॉक्टोरल डिजर्टेशन)। दिल्ली विश्वविद्यालय, भारत।
2. सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय। (2018)। वार्षिक रिपोर्ट 2017–18। भारत सरकार।
3. देसाई, एआर (2015)। सामाजिक न्याय और भारत का संविधानः एक सिंहावलोकन। पीएस नारायण (सं.) में, भारत में सामाजिक न्याय पर परिप्रेक्ष्य (पीपी. 21–38)। ऑक्सफोर्ड यूनिवरसिटि प्रेस।
4. घई, वाई. (2013)। सामाजिक न्याय और भारतीय संविधानः एक विश्लेषणात्मक समीक्षा। भारतीय संवैधानिक कानून समीक्षा, 8(2), 189–205।
5. चंद्रा, बी. (2011)। भारतीय संविधानः विचारधारा और सामाजिक न्याय। पियर्सन एजुकेशन इंडिया।
6. पाल, जे. (2010). सामाजिक न्याय और भारतीय संविधानः परिप्रेक्ष्य और चुनौतियाँ। रूटलेज।